International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(3): 25-28

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(3): 25-28
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-02-2023
Accepted: 22-03-2023

देवराज
पीएच. डी. शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग, दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
देवराज
पीएच. डी. शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग, दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

शुक्ल यजुर्वेदीय शिवसंकल्प सूक्त का चिन्तनीय तत्त्व

देवराज

सारांश
व्यक्तिगत जीवन में तो मन का महत्त्व है ही परन्तु सामाजिक दृष्टि से भी मन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यदि सबका मन शुभ सङ्कल्प, शुभ निश्चय एवं शुभ विचारों वाला हो जाता है तो किसी भी प्रकार का ईर्ष्या द्वेष, वैमनस्य, कलहादि नहीं रहेगा। परस्पर समभाव, सौहार्द होगा। परहित भावना से प्रेरित सब प्राणी सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय में व्याप्त होंगे जिससे राष्ट्र प्रगति पथ पर अग्रसर हो सर्वविध सुख समृद्धि प्राप्त करेगा।

साधारण मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले कर्मों से लेकर अत्यन्त मेधावी विद्वानों द्वारा किए जाने वाले कर्मों तक सभी कर्म मन की सहायता से ही किए जाते हैं। चित की एकाग्रता के बिना अभीष्ट कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

'मन अपूर्व है' इसके दो अभिप्राय हैं –

1) यह अद्वितीय है क्योंकि अद्भुत सामर्थ्य वाला है।
2) जिससे पूर्व अन्य इन्द्रियों की सृष्टि नहीं हुई थी 'न विद्यते पूर्वं यस्य तत्' । मन सबसे पहले था क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व एक बौद्धिक तत्त्व ने मन से इच्छा की 'एकोऽहं बहु स्याम् प्रजायै'।

आजकल सर्वत्र अशान्ति असंतोष, अराजकता, अनुशासनहीनता, असहिष्णुता का साम्राज्य इसी कारण व्याप्त है क्योंकि सबके मन में स्वार्थ, ईर्ष्या द्वेष आदि की कुभावनाएँ प्रबल हो गई हैं।

मन ही इन्द्रियों का प्रकाशक है क्योंकि उसी के द्वारा प्रवृत्त किए जाने पर वे अपने विषयों को ग्रहण करती हैं। तथा जो सब विद्याओं का आधार है। इस कारण वह पूजनीय है। वह सब प्राणियों के भीतर विद्यमान है। वह अन्दर से बोध करवाने वाला है। वह ऐसा मेरा मन शुभ निश्चय वाला हो, उत्तमोत्तम विचारों वाला हो। "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"।

कूटशब्द: शुक्ल यजुर्वेदीय शिवसंकल्प सूक्त, सामाजिक दृष्टि, शुभ सङ्कल्प, शुभ निश्चय

प्रस्तावना
वेद शब्द 'विद्' धातु तथा 'घञ्' प्रत्यय लगकर बना है जिसका अर्थ है 'ज्ञान'। — सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार वेद शब्द की निष्पत्ति चार धातुओं से हुई है- (i) विद्-ज्ञाने, (ii) विद् सत्तायाम्, (iii) विद्लृ लाभे और (iv) विद् विचारणे।[1]

[1] सत्तायां वद्यते ज्ञाने वेत्ति वन्ते वचारणे।
वन्दते वन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात् ।। (सध्दान्तकौमुदी, चुरादिगण)

— स्वामी दयानन्द का कहना है कि जिससे सभी मनुष्य सत्यविद्या जानते हैं, प्राप्त करते हैं, विचार करते हैं, और विद्वान होते हैं, अथवा सत्यविद्या की प्राप्ति के लिए जिसमें प्रवृत्त होते हैं, वे 'वेद' कहलाते हैं।[2]

वैदिक संहिता

`संहिता' का अर्थ है- `वेदों के मंत्रों का मूल रूप में विशिष्ट क्रम से संकलन'। मंत्रों के इन समूहों को चार वर्गों में रखा गया है।– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद।

यह वर्गीकरण मुख्यतः यज्ञ में काम करने वाले ऋत्विजों के चार भेदों को दृष्टि में रखकर हुआ था। ये चार ऋत्विज हैं– होता, अध्वर्यु, उद् गाता तथा ब्रह्मा। उन वेदों में इन चारों ऋत्विजों के लिए पठनीय मंत्रों का ही संकलन है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद 'यजुष्' से निष्पन्न है। यजुष् का अर्थ है - 'अनियताक्षरावसानो यजुः' । अर्थात् जिसकी समाप्ति अनिश्चित अक्षरों वाली है। अथवा 'गद्यात्मको यजुः' । अर्थात् जो गद्यमय है। यजुर्वेद के मन्त्रों का विषय यज्ञ संपन्न करना है। इसका पुरोहित 'अध्वर्यु' कहलाता है। जिसका अर्थ ही यज्ञ को संपादित करने वाला है। - 'अध्वरं युनक्ति'।

यजुर्वेद के दो भाग हैं - कृष्ण यजर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद । शुक्ल यजुर्वेद मे कुल 40 अध्याय वर्णित हैं। शुक्ल यजुर्वेद का 34 वां अध्याय 'शिवसंकल्प सूक्त' के नाम से जाना जाता है। तथा इसका अन्य नाम 'वाजसनेयि संहिता' भी है। क्योंकि प्राचीन आख्यान के अनुसार अपने गुरु वैशम्पायन के क्रोधित हो जाने के कारण याज्ञवल्क्य ने सूर्य की उपासना करके इस ज्ञान को प्राप्त किया था। सूर्य ने वाजी अर्थात् घोड़े का रूप धारण कर इसका उपदेश दिया था। इसलिए इसे वाजसनेयि संहिता कहा जाता है।

शिवसंकल्प सूक्त के देवता मन हैं, इसके ऋषि याज्ञवल्क्य हैं। तथा छंद त्रिष्टुप् है। शिवसंकल्प का अर्थ है - 'शिव' अर्थात् 'शुभ'। तथा 'संकल्प' अर्थात् 'निश्चय' । जिसका अर्थ होता है 'शुभ निश्चय वाला'। इस सूक्त में मन को शुभ निश्चय वाला होने की प्रार्थना की गई है।

इन्द्रिय निग्रह का महत्त्व

इन्द्रियों का प्रवर्तक मन है। यदि मनुष्य का मन संतुलित और आत्मविश्वास युक्त नहीं है तो स्वस्थ तथा सक्षम इन्द्रियाँ भी अपने कार्य को करने में सर्वथा असमर्थ रहेंगी। संसार में मनुष्य 'उत्कर्ष' अभ्युदय, सुखशान्ति तभी प्राप्त कर सकता है जब उसकी इन्द्रियाँ स्वस्थ एवं सक्षम हों ।

मनुष्य के शरीर में सभी अंगों का अपना - अपना महत्त्व होता है। , हाथ की छोटी से छोटी अंगुली भी अपना महत्त्व रखती है परन्तु मन का महत्त्व सर्वाधिक है। इसकी महत्ता एवं शांति विलक्षण है। मन ही मनुष्य के सुख - दुःख तथा बंधन और मोक्ष का कारण बनता है। 'मन एव कारणं मनुष्याणां बन्धमोक्षयोः'।

कठोपनिषद् में शरीर के विभिन्न अंगों की उनके महत्त्व के अनुसार रथ के विभिन्न अंगों के रूप में तुलना करते हुए कहा गया है कि _

आत्मा इस रथ का स्वामी है। जिस प्रकार मालिक रथ को स्वयं नहीं चलाता, उस पर बैठा हुआ सारथि को आदेश देता रहता है उसी प्रकार आत्मा भी शरीर रूपी रथ में विद्यमान रह कर सारथि रूपी बुद्धि को प्रेरित करता रहता है।

मन लगाम है। जिस प्रकार लगाम के इशारे से घोड़े चलते हैं उसी प्रकार मन से आदिष्ट होकर ही सब इन्द्रियाँ कार्य करती हैं।

इन्द्रियाँ घोड़े हैं और उनके विषय गमनशील हैं। जिस प्रकार घोड़ों की प्रवृत्ति इधर-उधर भागने की होती है उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी अपने - अपने विषयों की तरफ भागती रहती हैं।

मन के लिए संसार में कोई भी ऐसा स्थान नहीं है। जहां वह नहीं जा सकता वह सर्वत्र एक क्षण में कहीं भी जा सकता है। मन अत्यधिक चंचल होता है। इसलिए वह कहीं भी जा सकता है। मन के द्वारा ही जीवन के परम लक्ष्य परब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। उपनिषदों में भी कहा गया है की मन को नियंत्रण करके भी नित्य परम सुख का अनुभव किया जा सकता है। 'मनसैवेदमाप्तव्यम्' ।

शरीर, मन और इन्द्रियों से युक्त आत्मा को बुद्धिमान् भोक्ता कहते हैं। वस्तुतः आत्मा तो शुद्ध और अविकारी है परन्तु अज्ञान के कारण जब उसका तादात्म्य शरीर, मन और बुद्धि से स्थापित कर लिया जाता है तब वह कर्मों का भोक्ता हो जाता है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।
इंद्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।[3]

[2] वदन्ति-जानन्ति, वद्यते भवन्ति, वन्ते वचारयति, वन्दन्ते लभन्ते सर्वे मनुष्याः सत्विद्यां यैर्येषु वा वद्वान्सश्च भवन्ति, ते वेदाः। (ऋग्वेदभाष्यभू मका)

[3] कठोपनिषद् 1/3- 3,4

जो बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य का भेद नहीं कर पाती, जो मन को वश में करके इन्द्रियों को उनके बाह्य विषयों से विमुख नहीं कर पाती, वह बुद्धि विवेकरहित है। तथा जो बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य में अन्तर कर लेती है, जो मन को वश में करके इन्द्रियों को उनके विषय भोगों से विमुख कर लेती है , वह बुद्धि विवेकयुक्त कहलाती है।

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाशुचिः |
न स तत्पदमाप्नोति सूसारं चाधिगच्छति ।।
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ।।[4]

जिस प्रकार मनुष्य अपने लक्ष्य पर रथ द्वारा तभी पहुँच सकता है जब रथ का सारथि कुशलतापूर्वक लगाम की सहायता से घोड़ों को अपने नियन्त्रण में रख कर उचित मार्ग पर ले जाता है इसी प्रकार मनुष्य शरीर के द्वारा तभी परम पद को प्राप्त कर सकता है जब उचित तथा अनुचित में अन्तर करने वाली बुद्धि मन को नियन्त्रण में रखे और मन इन्द्रियों को वश में रख सके ।

मनुष्य रूपी घोड़े निरन्तर मन के आधीन रहते हैं। मन की शक्ति अपार और अतुलित है। मनुष्य मन के इशारे पर नाचता है। यही उसे किसी मार्ग पर प्रवृत करता है अथवा उससे निवृत करता है। नयन और नियमन दोनों मन के आधीन हैं।

पवित्र सङ्कल्पवाला मन उत्तम और उचित स्थान पर ले जाता है परन्तु पापसङ्कल्प वाला मन बुरे और अनुचित मार्ग पर ले जाकर दुष्प्रवृत्तियों में प्रवृत्त करवा कर मनुष्य के विनाश और दुर्गति का कारण बनता है।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृतप्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥[5]

इस प्रकार परम पद की प्राप्ति के लिए विवेकयुक्त बुद्धि रूपी सारथी द्वारा , मन रूपी लगाम की सहायता से इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में किया जाना अति आवश्यक है। मनुष्य जीवन को सफल और असफल, उत्तम और अनुत्तम, पुण्यात्मा और पापात्मा, योगी और भोगी, स्वस्थ और रोगी, शान्त और अशान्त, धार्मिक और अधार्मिक, आस्तिक और नास्तिक, ज्ञानी और अज्ञानी बनाना मन पर ही निर्भर करता है। इस प्रकार मन मनुष्य के व्यक्तित्व को अत्यधिक प्रभावित करता है।

त्रिविध अर्थों के प्रतिपादक

त्रिविध से तात्पर्य तीनों कालों (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) से है। इन्हीं तीनों कालों की व्यवस्था मन के कारण ही है। मनुष्य आज जो विचार विमर्श करता है। वह वर्तमान है। , आज जो व्यक्ति भविष्य के विषय में सोचता हुआ कहता है कि कल मैं ऐसा करूंगा या कुछ वर्षों बाद ऐसा हो जाएगा वह भविष्य काल है।

यदि किसी वस्तु को आज देखा गया है तो उसके संस्कार अवचेतन मन में स्थिर हो जाते हैं। कुछ समय बाद मनुष्य उसके विषय में सब कुछ भूल जाता है। उसे यह भी याद नहीं रहता कि उसने वस्तुविशेष
को कभी देखा था । परन्तु बहुत समय बाद भी जब वह उसे पुनः देखता है तो अवचेतन मन में सुप्तावस्था में पड़े हुए संस्कार पुनः जागृत हो जाते हैं और मनुष्य को याद आ जाता है कि उसने उस वस्तु विशेष को बहुत समय पहले देखा था। इससे भूतकाल की व्यवस्था होती है क्योंकि उस वस्तु का दर्शन भूतकालिक हो जाता है।

मनुष्य आज जो विचार विमर्श करता है वह वर्तमान है और आज जो भविष्य के विषय में सोचता है कि कल मैं ऐसा करूंगा, कछ वर्षों पश्चात् ऐसा हो जाएगा, वैसा हो जाएगा, यह भविष्यत् काल है।

इसी मन की एकाग्रता के द्वारा अग्निष्टोम यज्ञ सात पुरोहितों द्वारा सम्पादित किया जाता है। यदि मन एकाग्र न हो तो यज्ञ भी सम्पादित नहीं किया जा सकता । ये सात पुरोहित इस प्रकार हैं - होतृ, पोतृ, मैत्रावरुण, ग्राववरुण, ब्राह्मणाच्छंदसी, अच्छावाक् एवं अग्नीद।

आध्यात्मिक पक्ष में मन ही जीवनरूपी यज्ञ करवाता है जिसमें मन,पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा प्राणों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।[6]

विशेष ज्ञान एवं सामान्य ज्ञान की एकता का महत्त्व :

मन को ही प्रज्ञा, चिन्तन और धारण शक्ति माना गया है। प्रज्ञा का अर्थ है 'प्रकृष्टं ज्ञानम्' । चक्षु आदि इन्द्रियाँ केवल उन पदार्थों को ग्रहण कर सकती हैं जिनसे उनका साक्षात् सम्बन्ध होता है परन्तु मन अप्रत्यक्ष पदार्थों को भी ग्रहण करने में समर्थ होता है। इसके अतिरिक्त इन्द्रियों द्वारा ग्रहण

[4] कठोपनिषद् 1/3- 5,6

[5] शुक्ल यजुर्वेद 34.6

[6] शुक्ल यजुर्वेद 34.4

किया गया ज्ञान सामान्य ज्ञान होता है परन्तु मन के द्वारा विशेष प्रयास पूर्वक प्राप्त ज्ञान विशेष ज्ञान है। जिसमें वस्तु के गुण दोषों का सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का प्रत्येक दृष्टि से गहन , गम्भीर अध्ययन , विवेचन , विश्लेषण किया जाता है वह प्रज्ञा है। प्रज्ञा मन की सर्वोत्कृष्ट स्थिति है।

सभी प्रजाओं के अन्दर विद्यमान वह अमर ज्योति है। मन मनुष्य की उच्चतम श्रेष्ठ शक्तियों पर नियन्त्रण रखता है। वे शक्तियाँ प्रखर रूप को तभी प्राप्त कर सकती हैं जब मन पूर्ण नियन्त्रण में हो। इन्द्रियों को अपने अपने विषयों को ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त करवाने वाला मन ही है। ज्योतिस्वरूप वह सदा मनुष्य के साथ रहता है।

> यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।[7]

ऋचाएँ, साम और यजुष् ये तीनों सभी विद्याओं तथा ज्ञान के प्रतीक हैं। जिस प्रकार रथ के पहिए की सभी नेमियाँ पहिए के केन्द्र बिन्दु पर आधारित हैं, उसी से जुड़ी रहती हैं उसी प्रकार सभी विद्याएँ तथा समस्त ज्ञान मन पर ही आश्रित है। इसके दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम तो मन की एकाग्रता के बिना मनुष्य कोई भी ज्ञान अथवा विद्याप्राप्त नहीं कर सकता है। जब सूक्ष्मातिसूक्ष्म शारीरिक कार्य करने के लिए भी मन की एकाग्रता आवश्यक है क्योंकि इसके बिना ज्ञान प्राप्ति असम्भव है।

और दूसरा कारण यह है कि जितना भी ज्ञान है वह सब शब्द राशि में ओत प्रोत है। शब्दानुगम से रहित संसार में कोई ज्ञान नहीं है। जिस प्रकार आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर में होती है उसी प्रकार ज्ञान की अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा होती है। वे शब्द मन में ही प्रतिष्ठित होते हैं। जो बात मन के द्वारा सोची जाती है वही शब्दों द्वारा अभिव्यक्त की जाती है। शतपथ ब्राह्मण में मन और वाणी को गाय और बछड़े के समान बताया गया है जो पृथक् पृथक् दिखाई देने पर भी एक समान है

> वाग्घ वाऽएतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री मन एव वत्सस्तदिम्मनश्च वाक्च समानमेव सन्नानेव तस्मात्समान्या रज्ज्वा वत्सञ्च मातरञ्चाभिदधति ।[8]

मन के स्वस्थ होने पर ही शब्द स्फुरित होते हैं। उसके उद्विग्न और व्यग्र होने पर वे स्फुरित नहीं होते। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है-' अन्नमयं हि सोम्य मनः ' । अर्थात् हे सोम्य! मन अन्नमय है। भोजन न मिलने पर मनुष्य का ज्ञान भी सुप्त हो जाता है। जबकि भोजन मिलने पर तृप्त मन उत्साहयुक्त और स्फूर्तिमय हो जाता है। अतः ज्ञान की प्रतिष्ठा तथा स्फूर्ति मन में ही होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ल यजुर्वेद संहिता (उवट तथा महीधर-भाष्य) – मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971 ई० ।
2. शुक्ल यजुर्वेद संहिता (माध्यन्दिन शाखा) – स्वामी करपात्री जी द्वारा रचित वेदार्थ - पारिजातभाष्य - समन्वित, श्रीराधाकृष्ण - धानुका प्रकाशन संस्थान, कलकत्ता, वृन्दावन, प्रथम संस्करण, संवत् 2046 ।
3. शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिन) – श्रीपाद दामोदर सातवलेकर संपादित, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, तृतीय संस्करण, 1957 ई. ।
4. शुक्ल यजुर्वेद (काण्व) – श्रीपाद दामोदर सातवलेकर संपादित, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1940 ई. ।

   सायणभाष्य सहित, सं० त्र्यम्बक ना० धर्माधिकारी, वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे।
5. कठोपनिषद् - अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद- 1983 ई. ।

[7] शुक्ल यजुर्वेद 34.3

[8] शतपथ ब्राह्मण 113.1